

## समास-प्रकरण

### आवश्यक निर्देश

समास-प्रकरण के लिए निम्नलिखित निर्देशों को सावधानी से स्मरण कर लें—

१. (क) समास—(समसनं समासः) संक्षेप को समास कहते हैं, अर्थात् बहुत से पदों का मिलकर एक पद हो जाना समास कहलाता है। (ख) पूर्वपद और उत्तरपद—समास में एक से अधिक पद होते हैं, इनमें से पहले पद को पूर्वपद कहते हैं और अन्तिम (या अगले) पद को उत्तरपद कहते हैं।

२. विभक्तिलोप—(सुपो धातुप्रातिपदिकयोः, ७२१) समास होने पर उस समस्त पद की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञा होने से समास होनेवाले पदों के बाद जो विभक्तियाँ हैं, उनका इस सूत्र से लोप हो जाता है। अतः समस्त पद के शब्द अपने मूल रूप में प्राप्त होते हैं।

३. प्रातिपदिक संज्ञा—(कृत्तद्धितसमासाश्च, ११७) इस सूत्र से सभी समस्त (समास-युक्त) पदों की प्रातिपदिक संज्ञा होती है। प्रातिपदिक संज्ञा होने से अन्तर्गत विभक्तियों का लोप होने पर स्वौजस० (११८) से सु आदि कारक-विभक्तियाँ होंगी।

४. समास और विग्रह—समास होने पर जो पद बनता है, उसे समस्त पद कहते हैं। (वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः) समास के अर्थ को बतानेवाले वाक्य को विग्रह या विग्रह-वाक्य कहते हैं। जैसे—राज्ञः पुरुषः, यह विग्रह-वाक्य है और राजपुरुषः यह समस्तपद है। विग्रह के भी दो भेद हैं—लौकिक और अलौकिक। (१) लौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक (जनसाधारण) में प्रयोग होता है। जैसे—राज्ञः पुरुषः। (२) अलौकिक विग्रह उसे कहते हैं, जिसका लोक में प्रयोग नहीं होता है। जैसे—राज्ञः पुरुषः का राजन् + डस् पुरुष + सु यह अलौकिक विग्रह है।

५. उपसर्जन—(प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम्, ८९४)। समास के प्रकरण में सूत्रों में जो पद प्रथमान्त हैं, उन्हें उपसर्जन कहते हैं। जैसे—अव्ययं विभक्ति० (८९३) में अव्ययम् प्रथमान्त पद है। (उपसर्जनं पूर्वम्, ८९५) समास में उपसर्जन का पहले प्रयोग होता है, अर्थात् वह प्रथम पद होता है। (एकविभक्ति चापूर्वनिपाते, ९३६) विग्रह में जिस पद में एक ही (वही) विभक्ति रहती है, उसे उपसर्जन कहते हैं, परन्तु उसका पूर्वनिपात (पूर्व-प्रयोग) नहीं होता है। यह नियम तत्पुरुष आदि में लगता है। इस उपसर्जन के होने से पद के अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व हो जाता है। जैसे—अतिक्रान्तः मालाम् अतिमालः।

### १. केवल-समास

तत्रादौ केवलसमासः। समासः पञ्चधा। तत्र समसनं समासः। स च विशेषसंज्ञाविनिर्मुक्तः केवलसमासः प्रथमः। १। प्रायेण पूर्वपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावो द्वितीयः। २। प्रायेणोत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषस्तृतीयः। तत्पुरुषभेदः कर्मधारयः।

कर्मधारयभेदो द्विगुः । ३ । प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिश्वतुर्थः । ४ । प्रायेणोभयपदार्थ-  
प्रधानो द्वन्द्वः पञ्चमः । ५ ।

पहला केवल समास है। समास पाँच प्रकार का है। समसन (संक्षेप) को समास कहते हैं, अर्थात् बहुत से पदों का मिलकर एक पद हो जाना समास है। (१) केवल समास—यह समास का पहला भेद है। इस समास को कोई विशेष नाम नहीं दिया गया है। इसमें सुबन्त का सुबन्त के साथ समास होता है। (२) अव्ययीभाव समास—यह दूसरा भेद है। अव्ययीभाव समास में पूर्वपद का अर्थ प्रायः प्रधान होता है, अर्थात् प्रथम पद मुख्य होता है। (३) तत्पुरुष समास—यह तीसरा भेद है। तत्पुरुष समास में उत्तरपद (अन्तिम) पद का अर्थ प्रायः मुख्य होता है। तत्पुरुष का ही एक भेद कर्मधारय समास है। कर्मधारय का एक भेद द्विगु समास है। (४) बहुव्रीहि समास—यह चतुर्थ भेद है। बहुव्रीहि समास में अन्य (समस्त होनेवाले पदों से भिन्न) पद का अर्थ प्रायः मुख्य होता है। (५) द्वन्द्व समास—यह पंचम भेद है। इसमें प्रायः दोनों पदों का अर्थ मुख्य होता है।

### ८८९. समर्थः पदविधिः ( २-१-१ )

पदसम्बन्धी यो विधिः स समर्थाश्रितो बोध्यः ॥

पद-सम्बन्धी जो कार्य होते हैं, वे समर्थ (सामर्थ्यवाले) पदों में ही होते हैं। समर्थ का अभिप्राय यह है कि उन पदों में उस कार्य की शक्ति होनी चाहिए। अतः निरर्थक और असंबद्ध शब्दों में समास नहीं होगा।

### ८९०. प्राक्कडारात् समासः ( २-१-३ )

कडाराः कर्मधारय इत्यतः प्राक् समास इत्यधिक्रियते ॥

कडाराः कर्मधारये (२-२-३८) इस सूत्र से पहले समास का अधिकार है, अर्थात् उस सूत्र तक समास का प्रकरण है।

### ८९१. सह सुपा ( २-१-४ )

सुप् सुपा सह वा समस्यते ॥ समासत्वात्प्रातिपदिकत्वेन सुपो लुक् । परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः । 'पूर्वं अम् भूत सु' इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्वं चरडिति निर्देशात्पूर्वनिपातः । (इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च) । वागर्थो इव वागर्थाविव ॥

सुबन्त का सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। सूचना—समास होने से कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होती है और प्रातिपदिक संज्ञा होने से सुपो धातु० (७२१) से सुप् (विभक्तियों) का लोप हो जाता है।

परार्थाभिधानं वृत्तिः । कृत्तद्धितसमासैकशेषसनाद्यन्तधातुरूपाः पञ्च वृत्तयः । वृत्त्यर्थावबोधकं वाक्यं विग्रहः । स च लौकिकोऽलौकिकश्चेति द्विधा । तत्र पूर्वं भूत इति लौकिकः । 'पूर्वं अम् भूत सु' इत्यलौकिकः । भूतपूर्वः । भूतपूर्वं चरडिति निर्देशात् पूर्वनिपातः ।

परार्थ (अन्य अर्थ) का बोध कराने को वृत्ति कहते हैं, अर्थात् किसी प्रत्यय के लगाने से या अन्य पद के सम्बद्ध हो जाने से जो विशेष अर्थ की प्रतीति होती है, उसे परार्थ कहते हैं।

वृत्ति के द्वारा उसी परार्थ का बोध होता है। वृत्तियाँ पाँच हैं—(१) कृत्, (२) तद्धित, (३) समास, (४) एकशेष, (५) सन् आदि प्रत्ययान्त धातुरूप। अभिप्राय यह है कि कृत्-प्रत्यय, तद्धित-प्रत्यय और सन् आदि प्रत्यय लगाकर जो रूप बनते हैं, उनसे विशेष अर्थ का बोध होता है। इसी प्रकार समास और एकशेष में अन्यपद के अर्थ से युक्त विशेष अर्थ का बोध होता है। वृत्ति (समास) के अर्थ का बोध कराने वाले वाक्य को विग्रह कहते हैं। विग्रह दो प्रकार का होता है—१. लौकिक, २. अलौकिक। भूतपूर्वः का पूर्व भूतः, यह लौकिक विग्रह है, अर्थात् ऐसे वाक्यों का लोक (जन-साधारण) में प्रयोग होता है। 'पूर्व - अम् भूत - सु' यह अलौकिक विग्रह है, अर्थात् ऐसे प्रयोग लोक में नहीं होते हैं। भूतपूर्वः (भूतपूर्व, जो पहले हुआ हो)—पूर्व भूतः। सह सुपा (८९१) से समास, विभक्ति-लोप, भूत का पूर्व निपात अर्थात् पहले प्रयोग, प्रातिपदिक होने से विभक्ति। पाणिनि ने 'भूतपूर्वे चरद्' (५-३-५३) सूत्र में भूतपूर्व शब्द का प्रयोग किया है, इससे ज्ञात होता है कि भूत का पहले प्रयोग होता है। अतः यहाँ भूत का पहले प्रयोग होगा। (इवेन समासो विभक्त्यलोपश्च, वा०) 'इव' इस अव्यय के साथ सुबन्त का समास होता है और विभक्ति का लोप नहीं होता है। वागर्थोविव (वाणी और अर्थ के तुल्य)—वागर्थो + इव। समास और विभक्ति का अलोप। समास होने से एक पद हो जाता है और पूरे पद में एक स्वर होता है।

केवल-समास समाप्त।



## २. अव्ययीभाव-समास

८९२. अव्ययीभावः ( २-१-५ )

अधिकारोऽयं प्राक् तत्पुरुषात् ॥

तत्पुरुषः (९०७) सूत्र से पहले अव्ययीभाव समास का अधिकार है।

८९३. अव्ययं विभक्तिसमीपसमृद्धिवृद्ध्यर्थाभावात्ययासंप्रतिशब्दप्रादुर्भाव-  
पश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ( २-१-६ )

विभक्त्यर्थादिषु वर्तमानमव्ययं सुबन्तेन सह नित्यं समस्यते सोऽव्ययीभावः।  
प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः। प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। विभक्तौ, हरि डि अधि इति स्थिते ॥

निम्नलिखित १६ अर्थों में विद्यमान अव्यय का सुबन्त के साथ नित्य समास होता है और वह अव्ययीभाव समास होता है—१. विभक्ति (प्रथमा आदि), २. समीप, ३. समृद्धि, ४. वृद्धि (समृद्धि का अभाव), ५. अर्थ (वस्तु) का अभाव, ६. अत्यय (नारा), ७. असंप्रति (अनुचित), ८. शब्द की अभिव्यक्ति, ९. पश्चात् (पीछे), १०. यथा, ११. अनुपूर्व्य (क्रमशः), १२. यौगपद्य (एक साथ होना), १३. सादृश्य (समानता), १४. संपत्ति, १५. साकल्य (संपूर्णता) और १६. अन्त (अन्त तक)। प्रायेणाविग्रहो नित्यसमासः, प्रायेणास्वपदविग्रहो वा। नित्यसमास का

लक्षण है—१. प्रायः जिस समास का विग्रह न हो, २. अथवा प्रायः अपने पदों से विग्रह नहीं होता है, अर्थात् विग्रह वाक्य के पदों और समास होनेवाले पदों में अन्तर रहता है।

### ८९४. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ( १-२-४३ )

समासशास्त्रे प्रथमानिर्दिष्टमुपसर्जनसंज्ञं स्यात् ॥

समासशास्त्र (समास करनेवाले सूत्रों) में प्रथमान्त से निर्दिष्ट पद उपसर्जन कहा जाता है।

### ८९५. उपसर्जनं पूर्वम् ( २-२-३० )

समासे उपसर्जनं प्राक्प्रयोज्यम्। इत्यधेः प्राक् प्रयोगः। सुपो लुक्। एकदेशविकृतस्यानन्यत्वात्प्रातिपदिकसंज्ञायां स्वाद्युत्पत्तिः। अव्ययीभावश्चेत्यव्ययत्वात्सुपो लुक्। अधिहरि ॥

समास में उपसर्जन का पहले प्रयोग होता है। सूचना—१. अव्ययीभाव समास में आगे जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें किसी विशेष अर्थ में विशेष अव्यय का प्रयोग हुआ है। २. विग्रह-वाक्य और समास होनेवाले पदों में अन्तर होगा। विग्रह में अन्य शब्द होंगे, परन्तु समास अव्यय के साथ ही होगा। ३. समास होने पर उपसर्जनं० (८९५) से अव्यय का पहले प्रयोग होगा। ४. समास होने से सुपो धातु० (७२१) से सुप् (विभक्तियों) का लोप होगा। ५. ह्रस्व अकारान्त शब्दों के बाद पंचमी को छोड़कर अन्यत्र सुप् (विभक्तियों) को अम् हो जाएगा। तृतीया और सप्तमी में अम् विकल्प से होगा, अतः इनमें दो-दो रूप बनेंगे। ६. ह्रस्व अकारान्त को छोड़कर अन्य सभी स्थानों पर अव्ययीभावश्च (३७०) से अव्ययसंज्ञा होने से अव्ययादाप्सुपः (३७१) से सुप् (विभक्तियों) का लोप होगा। ऐसे शब्द अव्यय के तुल्य प्रयुक्त होंगे।

१. विभक्ति, सप्तमी-विभक्ति के अर्थ में अधि। अधिहरि (हरि में)—हरौ इति। हरि डि अधि। अधि का पूर्वप्रयोग, डि का लोप। एकदेशविकृतमनन्यवद् (परि०) से एक अंश में विकार होने से वस्तु अन्य नहीं हो जाती है, अतः डि का लोप होने पर भी अधिहरि की कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होने से सु आदि विभक्तियाँ होंगी। अव्ययसंज्ञा होने से सुप् का लोप।

### ८९६. अव्ययीभावश्च ( २-४-१८ )

अयं नपुंसकं स्यात् ॥

अव्ययीभावसमास नपुंसकलिङ्ग होता है।

### ८९७. नाव्ययीभावादतोऽम् त्वपञ्चम्याः ( २-४-८३ )

अदन्तादव्ययीभावात्सुपो न लुक्, तस्य पञ्चमीं विना अमादेशश्च स्यात् ॥ गाः पातीति गोपास्तस्मिन्नित्यधिगोपम् ॥

ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव के बाद सुप् का लोप नहीं होता है और उसको अम् आदेश होता है, पंचमी विभक्ति को छोड़कर। अधिगोपम् (ग्वाले में)—गोपि इति। सप्तमी विभक्ति के अर्थ में अधि है। गाः पाति इति गोपाः, तस्मिन्, गोपाशब्द का सप्तमी एक। अधि का पूर्व-प्रयोग, डि का लोप, नपुंसकलिङ्ग, ह्रस्वो नपुंसके० (२४३) से अधिगोपा के आ को ह्रस्व अ, इस सूत्र में सु को अम्।

## ८९८. तृतीयसप्तम्योर्बहुलम् (२-४-८४)

अदन्तादव्ययीभावान्तृतीयासप्तम्योर्बहुलमम्भावः स्यात्। अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा। कृष्णस्य समीपम् उपकृष्णम्। मद्राणां समृद्धिः सुमद्रम्। यवनानां व्यृद्धिर्दुर्यवनम्। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्। हिमस्यात्ययोऽतिहिमम्। निद्रा संप्रति न युज्यत इत्यतिनिद्रम्। हरिशब्दस्य प्रकाश इतिहरि। विष्णोः पश्चादनुविष्णु। योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। रूपस्य योग्यमनुरूपम्। अर्थमर्थं प्रति प्रत्यर्थम्। शक्तिमनतिक्रम्य यथाशक्ति ॥

ह्रस्व अकारान्त अव्ययीभाव के बाद तृतीया और सप्तमी को विकल्प से अम् होता है। अधिगोपम्, अधिगोपेन, अधिगोपे वा—तृतीया और सप्तमी में विकल्प से अम् हुआ है। सूचना—१. अकारान्त शब्दों में पंचमी में अन्त में आत् लगेगा, तृतीया में अम् और एत्, सप्तमी में अम् और ए तथा अन्य सभी स्थानों पर अम् ही लगेगा। २. समीप, समीप अर्थ में उप, उपकृष्णम् (कृष्ण के पास)—कृष्णस्य समीपम्। उप का पूर्व प्रयोग, विभक्ति-लोप, सु को अम्। ३. समृद्धि, समृद्धि अर्थ में सु, सुमद्रम् (मद्रदेश के लोगों की समृद्धि)—मद्राणां समृद्धिः। पूर्ववत्। ४. व्यृद्धि (समृद्धि का अभाव), व्यृद्धि अर्थ में दुर, दुर्यवनम् (यवनों की दुर्गति)—यवनानां व्यृद्धिः। पूर्ववत्। ५. अर्थाभाव (वस्तु का अभाव), अभाव अर्थ में निर्, निर्मक्षिकम् (मक्खियों का अभाव, सर्वथा एकान्त)—मक्षिकाणाम् अभावः। पूर्ववत्, नपुंसक होने से आ को ह्रस्व। ६. अत्यय (नाश), अत्यय अर्थ में अति, अतिहिमम् (बर्फ का नाश या समाप्ति)—हिमस्य अत्ययः। पूर्ववत्। ७. असंप्रति (अनुचित), अनुचित अर्थ में अति, अतिनिद्रम् (इस समय सोना उचित नहीं है)—निद्रा संप्रति न युज्यते। पूर्ववत्, अतिनिद्रा, ह्रस्वो० (२४३) से ह्रस्व। ८. शब्द-प्रादुर्भाव (शब्द की व्यक्ति), इस अर्थ में इति, इतिहरि (हरि शब्द का प्रादुर्भाव या व्यक्त होना)—हरिशब्दस्य प्रकाशः पूर्ववत्, अव्यय होने से सुप् का लोप। ९. पश्चात् (पीछे, बाद में), पश्चात् अर्थ में अनु, अनुविष्णु (विष्णु के पीछे)—विष्णोः पश्चात्। पूर्ववत्, सुप्-लोप। १०. योग्यतावीप्सापदार्थानतिवृत्तिसादृश्यानि यथार्थाः। यथा के चार अर्थ हैं : योग्यता, वीप्सा (द्विरुक्ति या बार-बार होना), पदार्थानतिवृत्ति (पदार्थ की सीमा का अतिक्रमण न करना, शक्तिभर) और सादृश्य। (क) योग्यता अर्थ में अनु, अनुरूपम् (रूप के योग्य)—रूपस्य योग्यम्। पूर्ववत्। (ख) वीप्सा अर्थ में प्रति, प्रत्यर्थम् (प्रत्येक अर्थ में)—अर्थम् अर्थं प्रति। पूर्ववत्। (ग) पदार्थानतिवृत्ति अर्थ में यथा, यथाशक्ति (शक्ति के अनुसार)—शक्तिम् अनतिक्रम्य। पूर्ववत्, सुप्-लोप।

## ८९९. अव्ययीभावे चाकाले (६-३-८१)

सहस्य सः स्यादव्ययीभावे न तु काले। हरेः सादृश्यं सहरि। ज्येष्ठस्यानुपूर्वेष्वनुज्येष्ठम्। चक्रेण युगपत् सचक्रम्। सदृशः सख्या ससखि। क्षत्राणां संपत्तिः सक्षत्रम्। तृणमप्यपरित्यज्य सतृणमत्ति। अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते साग्नि ॥

सह को स आदेश होता है, अव्ययीभाव समास में। परन्तु काल अर्थ में सह को स नहीं होगा। (घ) सादृश्य अर्थ में सह, सहरि (हरि की समानता) हरेः सादृश्यम्। पूर्ववत्, इससे सह को स, सुप्-लोप। ११. आनुपूर्व्य (क्रम से), आनुपूर्व्य अर्थ में अनु, अनुज्येष्ठम् (ज्येष्ठ

के क्रम से) — ज्येष्ठस्य अनुपूर्व्येण। पूर्ववत्। १२. यौगपद्य (एक साथ), यौगपद्य अर्थ में सह, सचक्रम् (चक्र के साथ) — चक्रेण युगपत्। पूर्ववत्, सह को स। १३. सादृश्य (समानता), सादृश्य अर्थ में सह, ससखि (मित्र के समान) — सदृशः संख्या। पूर्ववत्, सुप्-लोप। १४. संपत्ति (ऐश्वर्य), संपत्ति अर्थ में सह, सक्षत्रम् (क्षत्रियों की संपत्ति) — क्षत्राणां संपत्तिः। पूर्ववत्। १५. साकल्य (संपूर्णता), साकल्य अर्थ में सह, सतृणम् अत्ति (तिनके को भी न छोड़कर अर्थात् सब कुछ खा जाता है) — तृणम् अपि अपरित्यज्य। पूर्ववत्, सह को स। १६. अन्त (अन्त तक), अन्त अर्थ में सह, साग्नि (अग्निकृत ग्रन्थ तक पढ़ता है) — अग्निग्रन्थपर्यन्तम् अधीते। पूर्ववत्, सुप्-लोप।

### १००. नदीभिश्च (२-१-२०)

नदीभिः सह संख्या समस्यते। (समाहारे चायमिष्यते)। पञ्चगङ्गम्। द्वियमुनम्॥

नदी-विशेष के वाचक शब्दों के साथ संख्यावाचक का समास होता है। (समाहारे चायमिष्यते, वा०) यह समास समाहार (समूह) अर्थ में होता है। पञ्चगङ्गम् (पाँच गंगाओं का समूह) — पञ्चानां गङ्गानां समाहारः। इससे समास, नलोपः० (१८०) से पञ्चन् के न् का लोप, नपुंसक होने से ह्रस्वो० (२४३) से ह्रस्व। द्वियमुनम् (दो यमुनाओं का समूह) — द्वयोः यमुनयोः समाहारः। पूर्ववत्। नपुं० और ह्रस्व।

### १०१. तद्धिताः (४-१-७६)

आपञ्चमसमाप्तेरधिकारोऽयम्॥

पञ्चम अध्याय की समाप्ति तक तद्धित का अधिकार है, अर्थात् इस सूत्र के बाद पाँचवें अध्याय के अन्त तक जो प्रत्यय कहे गए हैं, वे तद्धित-प्रत्यय कहलाते हैं।

### १०२. अव्ययीभावे शरत्प्रभृतिभ्यः (५-४-१०७)

शरदादिभ्यश्च स्यात्समासान्तोऽव्ययीभावे। शरदः समीपमुपशरदम्। प्रतिविपाशम्। (जराया जरश्च) उपजरसमित्यादि॥

शरद् आदि शब्दों से अव्ययीभाव समास के अन्त में टच् (अ) प्रत्यय होता है। टच् का अ शेष रहता है। उपशरदम् (शरद् के समीप) — शरदः समीपम्। समीप अर्थ में उप, समासान्त टच् (अ)। प्रतिविपाशम् (विपाशा अर्थात् व्यास नदी की ओर) — विपाशायाः अभिमुखम्। अभिमुख्य अर्थ में प्रति, लक्षणेना० (२-१-१४) से समास, समासान्त टच् (अ)। (जराया जरश्च, वा०) जरा को जरस् आदेश होता है और अव्ययीभाव में समासान्त टच् होता है। उपजरसम् (बुढ़ापे के समीप) — जरायाः समीपम्। समीप अर्थ में उप, जरा को जरस् और टच् (अ)।

### १०३. अनश्च (५-४-१०८)

अनन्तादव्ययीभावाद्वाट्च स्यात्॥

अन्-अन्तवाले अव्ययीभाव समास के बाद समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होता है।

## १०४. नस्तद्धिते ( ६-४-१४४ )

नान्तस्य भस्य टेलोपस्तद्धिते । उपराजम् । अध्यात्मम् ॥

न्-अन्तवाले भसंज्ञक की टि (स्वर-सहित अन्तिम अंश) का लोप हो जाता है, बाद में तद्धित प्रत्यय हो तो। सूचना—(यचि भम्, १६५) य और अच् (स्वर) से प्रारम्भ होनेवाले प्रत्यय बाद में हों तो पूर्ववर्ती की भ संज्ञा होती है। उपराजम् (राजा के समीप)—राजः समीपम्। समीप अर्थ में उप समासान्त टच् (अ), भ संज्ञा होने से राजन् के अन् का लोप। अध्यात्मम् (आत्मा के विषय में)—आत्मनि इति। सप्तमी के अर्थ में अधि, टच्, आत्मन् के अन् का लोप।

## १०५. नपुंसकादन्यतरस्याम् ( ५-४-१०९ )

अन्नन्तं यत् क्लीबं तदन्तादव्ययीभावादृज्वा स्यात् । उपचर्मम् । उपचर्मम् ॥

अन्-अन्तवाले नपुंसकलिङ्ग शब्द से अव्ययीभाव में समासान्त टच् (अ) विकल्प से होता है। उपचर्मम्, उपचर्म (चर्म के समीप)—चर्मणः समीपम्। समीप अर्थ में उप, विकल्प से समासान्त टच् (अ), अन् का लोप। टच् के अभाव में नकारान्त शब्द रहेगा।

## १०६. झयः ( ५-४-१११ )

झयन्तादव्ययीभावादृज्वा स्यात् । उपसमिधम् । उपसमित् ॥

झय् (वर्ग के १ से ४) अन्त वाले अव्ययीभाव से समासान्त टच् (अ) विकल्प से होता है। उपसमिधम्, उपसमित् (समाधि के समीप)—समिधः समीपम्। समीप अर्थ में उप, समासान्त टच् (अ)। पक्ष में उपसमिध् का प्र० एक० का रूप है।

अव्ययीभाव-समास समाप्त।



## ३. तत्पुरुष-समास

सूचना—इस समास में सर्वत्र समास होने पर कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होगी और सुपो धातु० (७२१) से समस्त पदों के बाद की विभक्तियों का लोप हो जाएगा। तत्पश्चात् सु आदि विभक्तियाँ आएँगी।

## १०७. तत्पुरुषः ( २-१-२२ )

अधिकारोऽयं प्राग्बहुव्रीहेः ॥

बहुव्रीहि से पहले तत्पुरुष का अधिकार है, अर्थात् शेषो बहुव्रीहिः (१५०) से पहले जिन सूत्रों से समास कहा है, उसे तत्पुरुष समास कहते हैं।

## १०८. द्विगुश्च ( २-१-२३ )

द्विगुरपि तत्पुरुषसंज्ञकः स्यात् ॥

द्विगु-समास को भी तत्पुरुष कहते हैं।

१०९. द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ( २-१-२४ )

द्वितीयान्तं श्रितादिप्रकृतिकैः सुबन्तैः सह वा समस्यते, स च तत्पुरुषः । कृष्णाश्रितः कृष्णाश्रित इत्यादि ॥

द्वितीयान्त पद का श्रित, अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त और आपन्न शब्दों के सुबन्त रूपों के साथ विकल्प से समास होता है और उसे तत्पुरुष कहते हैं। कृष्णाश्रितः (कृष्ण के आश्रित) — कृष्णं श्रितः । इससे समास ।

११०. तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन ( २-१-३० )

तृतीयान्तं तृतीयान्तार्थकृतगुणवचनेनार्थेन च सह वा प्राग्वत् । शङ्कुलया खण्डः शङ्कुलाखण्डः । धान्येनार्थो धान्यार्थः । तत्कृतेति किम् ? अक्षणा काणः ॥

तृतीयान्त का तृतीयान्त के अर्थ से किए गए गुणवाचक शब्द के साथ तथा अर्थ शब्द के साथ विकल्प से समास होता है और वह तत्पुरुष होता है। शङ्कुलाखण्डः (सरौते से किया हुआ टुकड़ा) — शङ्कुलया खण्डः । इससे समास । धान्यार्थः (धान्य से प्रयोजन है) — धान्येन अर्थः । समास । प्रत्युदाहरण-अक्षणा काणः (आँख से काना) — कानापन आँख ने नहीं किया है, अतः समास नहीं हुआ ।

१११. कर्तृकरणे कृता बहुलम् ( २-१-३२ )

कर्तरि करणे च तृतीया कृदन्तेन बहुलं प्राग्वत् । हरिणा त्रातो हरित्रातः । नखैर्भिन्नो नखभिन्नः । ( ५० ) कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम् । नखनिर्भिन्नः ॥

कर्ता और करण में हुई तृतीया से युक्त पद का कृदन्त के साथ विकल्प से समास होता है। हरित्रातः (हरि से रक्षित) — हरिणा त्रातः । कर्ता में तृतीया है, इससे समास । नखभिन्नः (नाखूनों से फाड़ा हुआ) — नखैः भिन्नः । करण में तृतीया है, भिन्नः कृदन्त है, अतः समास । (कृद्ग्रहणे गतिकारकपूर्वस्यापि ग्रहणम्, परि०) कृत् के ग्रहण में गति-पूर्वक और कारक-पूर्वक कृदन्त का भी ग्रहण होता है, अतः गति (प्र, परा आदि उपसर्ग) और कर्म आदि कारक पहले होने पर भी इससे समास होगा। नखनिर्भिन्नः (नाखूनों से फाड़ा हुआ) — नखैः निर्भिन्नः । इस परिभाषा के कारण यहाँ पर भी इस सूत्र से समास ।

११२. चतुर्थी तदर्थार्थबलिहितसुखरक्षितैः ( २-१-३६ )

चतुर्थ्यन्तार्थाय यत् तद्वाचिना अर्थादिभिश्च चतुर्थ्यन्तं वा प्राग्वत् । यूपाय दारु यूपदारु । ( तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः ) । तेनेह न—रन्धनाय स्थाली । ( अर्थेन नित्यसमासो विशेध्यालिङ्गता चेति वक्तव्यम् ) । द्विजार्थः सूपः । द्विजार्था यवागूः । द्विजार्थं पयः । भूतबलिः । गोहितम् । गोसुखम् । गोरक्षितम् ॥

चतुर्थी-अन्तवाले शब्द के अर्थ के लिए जो वस्तु हो, उसके वाचक शब्द के साथ तथा अर्थ, बलि, हित, सुख और रक्षित, इन शब्दों के साथ चतुर्थ्यन्त का विकल्प से समास होता है। यूपदारु (यज्ञ-स्तम्भ के लिए लकड़ी) — यूपाय दारु । लकड़ी यूप के लिए है, अतः समास । (तदर्थेन प्रकृतिविकृतिभाव एवेष्टः) इस सूत्र में तदर्थ का अभिप्राय है प्रकृति-विकृति-भाव, अर्थात् चतुर्थ्यन्त विकार होना चाहिए और उत्तरपद प्रकृति या उपादानकारण। अतः

रन्थनाय स्थाली (पकाने के लिए पतीली) में प्रकृति-विकृतिभाव सम्बन्ध न होने से समास नहीं हुआ। (अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्, वा०) अर्थ शब्द के साथ नित्यसमास होता है और समस्त पद का लिंग विशेष्य के अनुसार होता है। द्विजार्थः सूपः (द्विज के लिए दाल)—द्विजाय अयं द्विजार्थः। चतुर्थ्यन्त का अर्थ शब्द के साथ समास और विशेष्य सूपः के अनुसार पुलिग। द्विजार्था यवागूः (ब्राह्मण के लिए लप्सी), द्विजार्थ पयः (ब्राह्मण के लिए दूध)—द्विजाय इयं द्विजार्था, द्विजाय इदं द्विजार्थम्। भूतबलिः (जीवों के लिए अन्न)—भूताय बलिः। गोहितम् (गायों के लिए हितकर)—गोभ्यः हितम्। गोसुखम् (गायों के लिए सुखकर)—गोभ्यः सुखम्। गोरक्षितम् (गायों के लिए सुरक्षित रखा हुआ)—गोभ्यः रक्षितम्। इस सूत्र से समास।

### ११३. पञ्चमी भयेन (२-१-३७)

चोराद्भयं चोरभयम्॥

पञ्चम्यन्त का भयवाचक सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है। चोरभयम् (चोर से भय)—चोराद् भयम्।

### ११४. स्तोकात्तिकदूरार्थकृच्छ्राणि क्तेन (२-१-३९)

स्तोक, अन्तिक और दूर अर्थवाले शब्दों तथा कृच्छ्र, इन पञ्चम्यन्तों का क्त-प्रत्ययान्त सुबन्त के साथ विकल्प से समास होता है।

### ११५. पञ्चम्याः स्तोकादिभ्यः (६-३-२)

अलुगुत्तरपदे। स्तोकात्मुक्तः। अन्तिकादागतः। अभ्याशादागतः। दूरादागतः। कृच्छ्रादागतः।

स्तोक आदि शब्दों के बाद पंचमी का लोप नहीं होता है, बाद में उत्तरपद हो तो। सूचना—निम्नलिखित उदाहरणों में पंचमी-तत्पुरुष समास होगा, परन्तु विभक्ति का लोप नहीं होगा। स्तोकात्मुक्तः (थोड़े से मुक्त)—स्तोकात् मुक्तः। अन्तिकादागतः (पास से आया)—अन्तिकात् आगतः। अभ्याशादागतः (समीप से आया)—अभ्याशात् आगतः। दूरादागतः (दूर से आया)—दूरात् आगतः। कृच्छ्रादागतः (कष्ट से आया)—कृच्छ्रात् आगतः।

### ११६. षष्ठी (२-२-८)

सुबन्तेन प्राग्वत्। राजपुरुषः।

षष्ठ्यन्त पद का सुबन्त के साथ समास होता है। राजपुरुषः (राजकीय पुरुष, सरकारी आदमी)—राज्ञः पुरुषः। षष्ठी तत्पुरुष समास, राजन् के न् का लोप, न लोपः० (१८०) से।

### ११७. पूर्वापराधरोत्तरमेकदेशिनैकाधिकरणे (२-२-१)

अवयविना सह पूर्वादयः समस्यन्ते एकत्वसंख्याविशिष्टश्चेदवयवी। षष्ठीसमासा-पवादः। पूर्व कायस्य पूर्वकायः। अपरकायः। एकाधिकरणे किम्? पूर्वश्लोत्राणाम्॥

पूर्व (आगे का), अपर (पीछे का), अधर (नीचे का) और उत्तर (ऊपर का), इन अवयव-वाचक शब्दों का अवयवी-वाचक शब्दों के साथ समास होता है, यदि अवयवी

एकवचनान्त हो तो। सूचना—(१) एकदेशी का अर्थ है अवयवी (अवयववाला) और एकदेश का अर्थ है अवयव। (२) एकाधिकरण का अर्थ है एक आधार या एक वस्तु, अतः अर्थ होता है एकत्व-संख्या-विशिष्ट अवयवी अर्थात् अवयवी एकवचन में हो। (३) यह षष्ठी-समास का अपवाद है। षष्ठी-समास होने पर षष्ठ्यन्त का पूर्व प्रयोग होता है। (४) इस सूत्र में पूर्वा० आदि प्रथमान्त है, अतः प्रथमा० (८९४) से पूर्व आदि का ही पूर्व-प्रयोग होगा। पूर्वकायः (शरीर का अगला भाग)—पूर्व कायस्य। समास, पूर्व का पहले प्रयोग। अपरकायः (शरीर का पिछला भाग)—अपरं कायस्य। पूर्ववत्। प्रत्युदाहरण—पूर्वश्छात्राणाम् (छात्रों में पहला) इसमें अवयवी बहुवचन है, अतः समास नहीं।

### ११८. अर्धं नपुंसकस्य ( २-२-२ )

समांशवाच्यर्धशब्दो नित्यं क्लीबे, स प्राग्वत्। अर्धं पिप्पल्याः अर्धपिप्पली ॥

समान भाग (बराबर आधा हिस्सा) के वाचक नित्य नपुंसकलिंग अर्ध शब्द का एकवचनान्त अवयवी के साथ समास होता है। अर्धपिप्पली (आधी पीपर)—अर्ध पिप्पल्याः। इससे समास, अर्ध का पूर्व-प्रयोग।

### ११९. सप्तमी शौण्डैः ( २-१-४० )

सप्तम्यन्तं शौण्डादिभिः प्राग्वत्। अक्षेषु शौण्डः अक्षशौण्ड इत्यादि। द्वितीयातृतीयेत्यादियोगविभागादन्यत्रापि तृतीयादिविभक्तीनां प्रयोगवशात्समासो ज्ञेयः ॥

सप्तम्यन्त का शौण्ड आदि शब्दों के साथ समास होता है। अक्षशौण्डः (पासे खेलने में चतुर)—अक्षेषु शौण्डः। समास। सूचना—द्वितीया, तृतीया आदि समास करनेवाले सूत्रों में से द्वितीया, तृतीया आदि का योग-विभाग (सूत्र के विभाजन) करने से अन्यत्र भी द्वितीया, तृतीया आदि विभक्तियों का प्रयोग के आधार पर समास होगा।

### १२०. दिक्संख्ये संज्ञायाम् ( २-१-५० )

संज्ञायामेवेति नियमार्थं सूत्रम्। पूर्वेषुकामशमी। सप्तर्षयः। तेनेह न—उतरा वृक्षाः। पञ्च ब्राह्मणाः ॥

दिशावाचक और संख्यावाचक शब्दों का समानाधिकरण (एक आधारवाला) सुबन्त के साथ संज्ञा में ही समास होता है। पूर्वेषुकामशमी (एक प्राचीन गाँव का नाम है)—पूर्वः इषुकामशमी। समास। सप्तर्षयः (सप्तर्षि)—सप्त च ते ऋषयः। समास। प्रत्युदाहरण—उतरा वृक्षाः (उत्तर के पेड़), पञ्च ब्राह्मणाः (पाँच ब्राह्मण)—संज्ञावाचक न होने से समास नहीं हुआ।

### १२१. तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च ( २-१-५१ )

तद्धितार्थे विषये उत्तरपदे च परतः समाहारे च वाच्ये दिक्संख्ये प्राग्वत्। पूर्वस्यां शालायां भवः—पूर्वा शाला इति समासे जाते ( सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः ) ॥

तद्धित के अर्थ के विषय में, उत्तरपद बाद में होने पर और समाहार (समूह, एकत्व) वाच्य हो तो दिशावाचक और संख्यावाचक शब्दों का समानाधिकरण सुबन्त के साथ समास होता है। ( सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः, वा० ) सर्वनाम शब्दों को वृत्तिमात्र में पुंवद्भाव होता है।

१२२. दिक्पूर्वपदादसंज्ञायां जः ( ४-२-१०७ )

अस्माद्भवाद्यर्थे जः स्यादसंज्ञायाम् ॥

दिशावाचक शब्द पहले होने पर भव (होना) आदि अर्थों में ज (अ) प्रत्यय होता है, संज्ञा में नहीं।

१२३. तद्धितेष्वचामादेः ( ७-२-११७ )

त्रिति णिति च तद्धितेष्वचामादेरचो वृद्धिः स्यात् । यस्येति च । पौर्वशालः ॥ पञ्च गावो धनं यस्येति त्रिपदे बहुव्रीहौ । ( द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम् ) ॥

त्रित् (जिसमें से त्रि हटा हो) और णित् (जिसमें से ण् हटा हो) तद्धित प्रत्यय बाद में होने पर अचों में आदि अच् को वृद्धि होती है । पौर्वशालः (पूर्ववाले घर में उत्पन्न व्यक्ति) — पूर्वस्यां शालायां भवः । तद्धिता० (१२१) से भवः इस तद्धित के अर्थ में समास, विभक्ति-लोप, सर्वनाम्नो० (वा०) से पूर्वा को पुंलिंग पूर्व, भव अर्थ में दिक्० (१२२) से ज (अ) प्रत्यय, पूर्वशाला + अ, इससे पू के ऊ को वृद्धि औ, यस्येति च (२३६) से आ का लोप, प्रथमा एक० । (द्वन्द्वतत्पुरुषयोरुत्तरपदे नित्यसमासवचनम्, वा०) द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में उत्तरपद बाद में होने पर नित्यसमास होता है ।

१२४. गौरतद्धितलुकि ( ५-४-९२ )

गोऽन्तात्तत्पुरुषाट् च स्यात् समासान्तो न तु तद्धितलुकि । पञ्चगवधनः ॥

गो शब्द अन्तवाले तत्पुरुष से समासान्त ट् च (अ) प्रत्यय होता है, तद्धित-प्रत्यय का लोप होने पर नहीं होगा । पञ्चगवधनः (पाँच गायरूपी धनवाला) — पञ्च गावः धनं यस्य सः । इस बहुव्रीहि समास में धन को उत्तरपद मानकर तद्धिता० (१२१) से पञ्च गावः का तत्पुरुष समास, न्-लोप, पञ्चगो, इससे ट् च (अ), ओ को अव्, सुप् ।

१२५. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ( १-२-४२ )

समानाधिकरण (एक आधारवाला) तत्पुरुष को कर्मधारय कहते हैं ।

१२६. संख्यापूर्वो द्विगुः ( २-१-५२ )

तद्धितार्थेत्यत्रोक्तस्त्रिविधः संख्यापूर्वो द्विगुसंज्ञः स्यात् ॥

तद्धितार्थ, उत्तरपद और समाहार में यदि संख्या पूर्व में होगी तो उसे द्विगु समास कहेंगे ।

१२७. द्विगुरेकवचनम् ( २-४-१ )

द्विग्वर्थः समाहार एकवत्स्यात् ॥

द्विगु समास का अर्थ समाहार (समूह) होने पर एकवचन होता है ।

१२८. स नपुंसकम् ( २-४-१७ )

समाहारे द्विगुर्द्वन्द्वश्च नपुंसक स्यात् । पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवम् ॥

समाहार में द्विगु और द्वन्द्व समास नपुंसक होते हैं । पञ्चगवम् (पाँच गायों का समूह) — पञ्चानां गवां समाहारः । तद्धिता० (१२१) से समास, पञ्चन् के न् का लोप,

गोरतद्धित० (१२४) से टच् (अ), ओ को अच्, संख्या पहले होने से द्विगु संज्ञा, सूत्र १२७, १२८ से नपुंसक० एकवचन।

### १२९. विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ( २-१-५७ )

भेदकं भेद्येन समानाधिकरणेन बहुलं प्राग्वत्। नीलमुत्पलं नीलोत्पलम्।  
बहुलग्रहणात्क्वचिन्नित्यम्—कृष्णसर्पः। क्वचिन्न—रामो जामदग्न्यः ॥

विशेषण का विशेष्य के साथ बहुल से समास होता है और वह कर्मधारय समास होता है। सूचना—१. विशेषण को भेदक और विशेष्य को भेद्य भी कहते हैं। २. विशेषणम् प्रथमान्त है, अतः विशेषण का पहले प्रयोग होगा। नीलोत्पलम् (नीला कमल)—नीलम् उत्पलम्। समास। बहुल कहने से कहीं नित्यसमास होगा। जैसे—कृष्णसर्पः (काला साँप)—कृष्णः चासौ सर्पः। बहुल कहने से कहीं समास नहीं होगा। जैसे—रामो जामदग्न्यः (जमदग्नि का पुत्र राम, परशुराम)—समास नहीं हुआ।

### १३०. उपमानानि सामान्यवचनैः ( २-१-५५ )

घन इव श्यामो घनश्यामः। (शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्)।  
शाकप्रियः पार्थिवः शाकपार्थिवः। देवपूजको ब्राह्मणो देवब्राह्मणः ॥

उपमानवाचक सुबन्त का सामान्य धर्म-वाचक सुबन्त के साथ समास होता है और वह कर्मधारय होता है। सूचना—१. जिससे समानता बताई जाती है, उसे उपमान कहते हैं। २. दोनों वस्तुओं में जिस गुण की समानता बताई जाती है, उसे समान-धर्म, सामान्यधर्म या साधारण धर्म कहते हैं। घनश्यामः (बादल के तुल्य श्याम वर्णवाला, कृष्ण)—घन इव श्यामः। समास। (शाकपार्थिवादीनां सिद्धये उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्, वा०) शाकपार्थिव आदि समस्त पदों की सिद्धि के लिए उत्तरपद का लोप होता है। शाकपार्थिवः (साग का प्रेमी राजा)—शाकप्रियः पार्थिवः। समास और प्रिय का लोप। देवब्राह्मणः (देवताओं का पूजक ब्राह्मण)—देवपूजकः ब्राह्मणः। समास और पूजक का लोप।

### १३१. नञ् ( २-२-६ )

नञ् सुपा सह समस्यते ॥

नञ् का सुबन्त के साथ समास होता है।

### १३२. नलोपो नञः ( ६-३-७३ )

नञो नस्य लोप उत्तरपदे। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः ॥

नञ् के न् का लोप होता है, उत्तरपद बाद में हो तो। अब्राह्मणः (ब्राह्मण-भिन्न, ब्राह्मणेतर)—न ब्राह्मणः। नञ् से समास, इससे न् का लोप होने से अ शेष रहेगा।

### १३३. तस्मान्नुडचि ( ६-३-७४ )

लुप्तनकारान्नञ् उत्तरपदस्याजादेर्नुडागमः स्यात्। अनश्वः। नैकथेत्यादी तु नशब्देन सह सुप्सुपेति समासः।

नञ् के न् का लोप होने पर अ के बाद नुद् (न्) आगम होगा, बाद में कोई अजादि उत्तरपद हो तो। अनश्वः (घोड़े से भिन्न जानवर)—न अश्वः। नञ्-समास, न्-लोप, नुद्।

नैकधा (अनेक प्रकार से)—न + एकधा। यहाँ पर निषेधार्थक न शब्द के साथ सह सुपा से समास। यह न नञ् से भिन्न है, अतः न् का लोप और नुद् नहीं हुआ।

### १३४. कुगतिप्रादयः ( २-२-१८ )

एते समर्थेन नित्यं समस्यन्ते। कुत्सितः पुरुषः कुपुरुषः ॥

कु शब्द, गति-संज्ञक और प्र आदि उपसर्गों का समर्थ सुबन्तों के साथ नित्य समास होता है। कुपुरुषः (नीच आदमी)—कुत्सितः पुरुषः। कुत्सित के अर्थ में कु है, इससे नित्यसमास।

### १३५. ऊर्यादिच्चिडाचश्च ( १-४-६१ )

ऊर्यादयश्च्यन्ता डाजन्ताश्च क्रियायोगे गतिसंज्ञाः स्युः। ऊरीकृत्य। शुक्लीकृत्य। पटपटाकृत्य। सुपुरुषः ॥ ( प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया )। प्रगत आचार्यः प्राचार्यः। ( अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया )। अतिक्रान्तो मालामिति विग्रहे—

ऊरी आदि, च्वि-प्रत्ययान्त और डाच् प्रत्ययान्त शब्द क्रिया के योग में गति-संज्ञावाले होते हैं। ऊरीकृत्य (स्वीकार करके)—ऊरी + कृत्वा। इससे गति-संज्ञा होने से कुगति० से समास, समास होने से क्त्वा को ल्यप् (य) और ह्रस्वस्य० से तुक् (त्)। शुक्लीकृत्य (अश्वेत को श्वेत बनाकर)—अशुक्लं शुक्लं कृत्वा। अभूततद्भाव अर्थ में च्वि, च्वि का लोप, अस्य च्चौ (१२२८) से अ को ई, समास होने से क्त्वा को ल्यप्, तुक्। पटपटाकृत्य (पटपट करके)—पटत् पटत् इति कृत्वा। अव्यक्ता० (१२३२) से डाच् (आ), द्वित्व, अत् का लोप, पहले त् को पररूप, समास, त्वा को ल्यप्, तुक्। सुपुरुषः (सज्जन व्यक्ति)—शोभनः पुरुषः। शोभन के अर्थ में सु, कुगति० (१३४) से समास।

( प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया, वा० ) प्र आदि का प्रथमान्त के साथ गत आदि अर्थ में समास होता है। प्राचार्यः (प्रधानाचार्य)—प्रगतः आचार्यः। प्र का आचार्य के साथ समास। ( अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया, वा० ) अति आदि का द्वितीयान्त के साथ क्रान्त आदि अर्थ में समास होता है।

### १३६. एकविभक्ति चापूर्वनिपाते ( १-२-४४ )

विग्रहे यन्नियतविभक्तिकं तदुपसर्जनसंज्ञं स्यान्तु तस्य पूर्वनिपातः ॥

विग्रह में जिसमें एक ही विभक्ति रहती है, उसकी उपसर्जनसंज्ञा होती है, किन्तु उसकी पूर्व-प्रयोग नहीं होता।

### १३७. गोस्त्रियोरुपसर्जनस्य ( १-२-४८ )

उपसर्जनं यो गोशब्दः स्त्रीप्रत्ययान्तं च तदन्तस्य प्रातिपदिकस्य ह्रस्वः स्यात्। अतिमालः। ( अवादयः कुष्ठाद्यर्थे तृतीयया )। अवकुष्टः कोकिलया—अवकोकिलः। ( पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या )। परिग्लानोऽध्ययनाय—पर्यध्ययनः। ( निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या )। निष्क्रान्तः कौशाभ्याः—निष्कौशाभ्यः ॥

उपसर्जन जो गो शब्द और स्त्री-प्रत्ययान्त शब्द, तदन्त (वह जिसके अन्त में है) प्रातिपदिक को ह्रस्व होता है। सूचना—इस ह्रस्व के कारण गो को गु होता है, स्त्रीलिंग के आ

को अ और ई को इ। अतिमालः (माला को अतिक्रमण करनेवाला, माला से भी बढ़कर)—  
अतिक्रान्तः मालाम्। अति का माला से समास, उपसर्जन होने से माला के आ को ह्रस्व अ।  
(अवादयः कृष्ठाद्यर्थे तृतीयया वा०) अव आदि का तृतीयान्त के साथ समास होता है, कृष्ट  
आदि अर्थ में। अवकोकिलः (कोयल से कूजित)—अवकृष्टः कौकिलया। अव का कोकिला  
से समास, आ को ह्रस्व। (पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या, वा०) परि आदि का चतुर्थ्यन्त के  
साथ समास होता है, ग्लान (खिन्न) आदि अर्थ में। पर्यध्ययनः (पढ़ाई से खिन्न)—  
परिग्लानः अध्ययनाय। परि का अध्ययन के साथ समास। (निरादयः क्रान्ताद्यर्थे पञ्चम्या,  
वा०) निर् आदि का पञ्चम्यन्त के साथ समास होता है, निष्क्रान्त (निकला हुआ) आदि अर्थ  
में। निष्कौशाम्बिः (कौशाम्बी नगरी से निकला हुआ)—निष्क्रान्तः कौशाम्ब्याः। निर् का  
कौशाम्बी से समास, उपसर्जन होने से ई को ह्रस्व इ। र् को विसर्ग, ष्।

### १३८. तत्रोपपदं सप्तमीस्थम् (३-१-१२)

सप्तम्यन्ते पदे कर्मणीत्यादी वाच्यत्वेन स्थितं यत्कुम्भादि तद्वाचकं पदमुपपदसंज्ञं  
स्यात्।

सप्तम्यन्त पद 'कर्मणि' आदि में वाच्यरूप से स्थित कुम्भ आदि के वाचक पद को  
उपपद कहते हैं। जैसे—कर्मण्यण् (७९१) में कर्मणि सप्तमी है। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः में  
कर्म कुम्भ को उपपद कहेंगे।

### १३९. उपपदमतिङ् (२-२-१९)

उपपदं सुबन्तं समर्थेन नित्यं समस्यते। अतिङन्तश्चायं समासः। कुम्भं करोतीति  
कुम्भकारः। अतिङ् किम्? मा भवान् भूत्। मडि लुडिति सप्तमीनिर्देशान्माडुपपदम्, (प०)  
गतिकारकोपपदानां कृद्धिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः॥ व्याघ्री। अश्वक्रीती।  
कच्छपीत्यादि॥

उपपद सुबन्त का समर्थ के साथ नित्य समास होता है। यह समास तिङन्त के साथ  
नहीं होगा। कुम्भकारः (घड़ा बनानेवाला, (कुम्हार)—कुम्भं करोति इति। कुम्भं + कृ,  
कर्मण्यण् (७९१) से अण् (अ), अचो ङिति (१८२) से ऋ को आर्,  
कुम्भ + अम् + कार, इससे समास होकर अम् का लोप, सु। प्रत्युदाहरण—भा भवान् भूत्  
(आप न हों)—में भूत् तिङन्त रूप है, अतः इसका मा के साथ समास नहीं हुआ। माडि  
लुङ् (४३४) सूत्र में माडि में सप्तमी है, अतः मा यह उपपद है। (गतिकारकोपपदानां  
कृद्धिः सह समासवचनं प्राक् सुबुत्पत्तेः, परि०) गति, कारक और उपपद का कृदन्त के  
साथ सुप् आने से पूर्व ही समास होता है। व्याघ्री (बाघिन)—व्याजिप्रति (विशेष रूप से  
चारों ओर सूँघती है) इस अर्थ में वि + आ + घ्रा + क (अ)। आतश्चोपसर्गे (७८९) से क  
(अ) प्रत्यय और आतो लोप० (४८८) से घ्रा के आ का लोप। व्या का घ्र के साथ सुप्  
आने से पहले कुगतिप्रादयः (९३४) से गतिसमास, जातिवाचक होने से जातेरस्त्री०  
(१२५४) से डीष् (ई), बाद में सु (स्) और उसका हल्० (१७९) से लोप। अश्वक्रीती  
(घोड़े के द्वारा खरीदी गई)—अश्वेन क्रीता, कर्तृकरणे० (९११) से तृतीया-समास और  
क्रीतात्० (१२४९) से डीष् (ई), सु और उसका लोप। कच्छपी (कछुवी)—कच्छेन

पिबति, कच्छ + पा + क (अ)। क प्रत्यय होकर पा के आ का लोप। उपपद० (१३९) से उपपद पहले होने से समास और जाते० (१२५४) से ङीप् (ई), सु और उसका लोप।

### १४०. तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः (५-४-८६)

संख्याव्ययादेरङ्गुल्यन्तस्य समासान्तोऽच् स्यात्। द्वे अङ्गुली प्रमाणमस्य-द्व्यङ्गुलम्। निर्गतमङ्गुलिभ्यो निरङ्गुलम् ॥

तत्पुरुष समास के आदि में संख्या-वाचक और अव्यय हो तथा अन्त में अङ्गुलि शब्द हो तो समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। द्व्यङ्गुलम् (दो अंगुल लम्बा)—द्वे अङ्गुली प्रमाणम् अस्य, इस विग्रह में तद्धितार्थो० (१२१) से समास, प्रमाण अर्थ में मात्रच् (मात्र) प्रत्यय और द्विगोर्लुक्० (४-१-८८) से उसका लोप, इससे समासान्त अच् (अ) प्रत्यय, यस्येति च (२३६) से इ का लोप, नपुं० प्र० एक०। निरङ्गुलम् (अंगुलियों से निकला हुआ)—निर्गतम् अङ्गुलिभ्यः, निरादयः० (वा०) से समास, निरङ्गुलि + अच् (अ). समासान्त अच्, इ का लोप, नपुं० प्र० एक०।

### १४१. अहःसर्वैकदेशसंख्यातपुण्याच्च रात्रेः (५-४-८७)

एभ्यो रात्रेरच् स्याच्चात्संख्याव्ययादेः। अहर्ग्रहणं द्वन्द्वार्थम् ॥

अहः, सर्व, एकदेश (अवयव), संख्यात, पुण्य तथा संख्या और अव्यय के बाद रात्रि शब्द से समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—सूत्र में अहः का ग्रहण द्वन्द्व समास के लिए है, अर्थात् अहन् का रात्रि के साथ द्वन्द्व समास होने पर समासान्त अच् होगा।

### १४२. रात्राहाहाः पुंसि (२-४-२९)

एतदन्तौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ पुंस्येव। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रः। सर्वरात्रः। संख्यातरात्रः। (संख्यापूर्व रात्रं क्लीबम्)। द्विरात्रम्। त्रिरात्रम् ॥

रात्र, अहन् और अह, ये जिस द्वन्द्व या तत्पुरुष के अन्त में होते हैं, वे पुल्लिङ्ग में ही आते हैं। अहोरात्रः (दिन और रात)—अहश्च रात्रिश्च। द्वन्द्व समास, दोनों सु का लोप, अहन् (३६३) से न् को रु और हशि च से रु को उ, गुण-सन्धि, अहोरात्रि + अच् (अ), समासान्त अच्, इ का लोप, पुल्लिङ्ग प्र० एक०। सर्वरात्रः (सारी रात)—सर्वा रात्रिः, कर्मधारय समास, सर्वा को पुंवद्भाव, समासान्त अच्, इ का लोप, पुल्लिङ्ग। संख्यातरात्रः (गिनी हुई रातें)—संख्याता रात्रयः। सर्वरात्रः के तुल्य। (संख्यापूर्व रात्रं क्लीबम्, वा०) संख्या पूर्व में होने पर रात्र शब्द नपुंसकलिङ्ग होता है। द्विरात्रम् (दो रात्रियों का समूह)—द्वयोः रात्र्योः समाहारः। तद्धितार्थो० से समाहार में समास, समासान्त अच्, इ-लोप, इस वार्तिक से नपुं०। त्रिरात्रम् (तीन रात्रियों का समूह)—तिसृणां रात्रिणां समाहारः। द्विरात्रम् के तुल्य।

### १४३. राजाहःसखिभ्यष्टच् (५-४-९१)

एतदन्तात्तत्पुरुषाट्ठच् स्यात्। परमराजः ॥

राजन्, अहन् और सखि शब्द तत्पुरुष के अन्त में हों तो समासान्त ट्ठच् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—टिट् होने से स्त्रीलिङ्ग में ङीप् (ई) होगा। परमराजः (श्रेष्ठ राजा)—परमः

चासौ राजा। परम और राजन् का विशेषण० (१२९) से समास, इससे समासान्त टच् (अ), नस्तद्धिते (१०४) से राजन् के अन् का लोप।

### १४४. आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः ( ६-३-४६ )

महत आकारोऽन्तादेशः स्यात्समानाधिकरणे उत्तरपदे जातीये च परे। महाराजः। प्रकारवचने जातीयर्। महाप्रकारो महाजातीयः॥

महत् के त् को आ आदेश हो जाता है, समानाधिकरण उत्तरपद और जातीय बाद में हो तो। महाराजः (बड़ा राजा)—महान् चासौ राजा। विशेषण-विशेष्य समास, समासान्त टच्, अन् का लोप, इससे महत् के त् को आ। परमराजः के तुल्य। महाजातीयः (बड़े ढंग का)—महाप्रकारः, प्रकारवचने जातीयर् (५-३-६९) से प्रकार अर्थ में महत् से जातीयर् (जातीय) प्रत्यय, इससे महत् के त् को आ।

### १४५. द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः ( ६-३-४७ )

आत्स्यात्। द्वौ च दश च द्वादश। अष्टाविंशतिः।

द्वि शब्द के इ को और अष्टन् के न् को आ अन्तादेश होता है, संख्या अर्थ में, किन्तु बहुव्रीहि समास में और अशीति बाद में हों तो नहीं। द्वादश (बारह)—द्वौ च दश च। द्वन्द्वसमास। द्विदशन् में इ को आ, प्र० एक०। अष्टाविंशतिः (२८)—अष्टौ च विंशतिः च। द्वन्द्व समास, इससे न् को आ।

### १४६. त्रेस्त्रयः ( ६-३-४८ )

त्रयोदश। त्रयोविंशतिः। त्रयस्त्रिंशत्॥

त्रि शब्द को त्रयस् आदेश होता है, संख्या अर्थ में, किन्तु बहुव्रीहि समास में और अशीति बाद में हो तो नहीं। त्रयोदश (१३)—त्रयश्च दश च। द्वन्द्व, त्रि को त्रयस्, स् को रु, रु को उ और गुण-संधि। त्रयोविंशतिः (२३)—त्रयश्च विंशतिश्च। त्रयोदश के तुल्य। त्रयस्त्रिंशत् (३३)—त्रयश्च त्रिंशत् च। द्वन्द्व, त्रि को त्रयस्।

### १४७. परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः ( २-३-२६ )

एतयोः परपदस्येव लिङ्गं स्यात्। कुक्कुटमयूरीविमे। मयूरीकुक्कुटाविमौ। अर्धपिप्पली। (द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः)। पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पञ्चकपालः पुरोडाशः॥

द्वन्द्व और तत्पुरुष समास में पर (बादवाले) पद के तुल्य लिंग होता है। कुक्कुटमयूरी इमे (मुर्गा और मोरनी)—कुक्कुटश्च मयूरी च। द्वन्द्व, इससे मयूरी के तुल्य स्त्रीलिंग, अतः इमे स्त्रीलिंग प्र० द्विवचन विशेषण है। मयूरीकुक्कुटौ इमौ (मोरनी और मुर्गा)—मयूरी च कुक्कुटश्च। द्वन्द्व, कुक्कुट के तुल्य पुल्लिंग, अतः इमौ पुल्लिंग प्र० द्विव० है। अर्धपिप्पली (पीपर का आधा हिस्सा)—अर्धं पिप्पल्याः। अर्ध० (११८) से समास, पिप्पली स्त्रीलिंग है, अतः स्त्रीलिंग हुआ। (द्विगुप्राप्तापन्नालम्पूर्वगतिसमासेषु प्रतिषेधो वाच्यः, वा०) द्विगु समास, प्राप्त, आपन्न और अलं पूर्ववाले समास में तथा गति समास में परवत्

लिंग नहीं होता है, अर्थात् इन स्थानों पर पूर्व शब्द के तुल्य लिंग होगा। पञ्चकपालः पुरोडाशः (पाँच सकोरों में पकाया गया पुरोडाश)—पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः। तद्धितार्थो (१२१) से तद्धितार्थ में द्विगुसमास, कपाल नपुं० है, तदनुसार नपुं० नहीं हुआ।

### १४८. प्राप्तापने च द्वितीयया ( २-२-४ )

समस्येते। अकारश्चानयोरन्तादेशः। प्राप्तो जीविकां प्राप्तजीविकः। आपन्नजीविकः। अलं कुमार्यै अलंकुमारिः। अतएव ज्ञापकात्समासः। निष्कौशाम्बिः॥

प्राप्त और आपन्न शब्दों का द्वितीयान्त के साथ समास होता है और इनको अ अन्तादेश होता है। प्राप्तजीविकः (जिसे जीविका मिल गई है)—प्राप्तः जीविकाम्। इससे समास, एकविभक्ति० (१३६) से उपसर्जन संज्ञा, गोस्त्रियो० (१३७) से जीविका के आ को ह्रस्व, द्विगुप्राप्ता० (वा०) से जीविका के तुल्य स्त्रीलिंग न होकर विशेष्य के तुल्य पुल्लिंग हुआ। आपन्नजीविकः (जीविका को प्राप्त)—आपन्नः जीविकाम्। प्राप्तजीविकः के तुल्य। अलंकुमारिः (कुमारी के योग्य)—अलं कुमार्यै। द्विगु० (वा०) में अलं-पूर्वक समास में परवत्-लिंग का निषेध सूचित करता है कि अलं के साथ समास होता है, अतः समास, गोस्त्रियो० (१३७) से ई को ह्रस्व, कुमारी के तुल्य स्त्रीलिंग नहीं हुआ और विशेष्यवत् पुल्लिंग हुआ। निष्कौशाम्बिः (कौशाम्बी से निर्गत)—निर्गतः कौशाम्ब्याः। प्रादिसमास, ई को ह्रस्व, विशेष्यवत् पुल्लिंग।

### १४९. अर्धर्चाः पुंसि च ( २-४-३१ )

अर्धर्चादयः शब्दाः पुंसि क्लीबे च स्युः। अर्धर्चः। अर्धर्चम्। एवंः ध्वजतीर्थशरीरमण्डपयूपदेहाङ्कुशपात्रसूत्रादयः। सामान्ये नपुंसकम्। मृदु पचति। प्रातः कमनीयम्॥

अर्धर्च आदि शब्द पुल्लिंग और नपुंसकलिंग दोनों में होते हैं। अर्धर्चः, अर्धर्चम् (ऋचा का आधा)—अर्धम् ऋचः। अर्ध० (११८) से समास, ऋक्पू० (१७८) से समासान्त अ। पुं० और नपुं०। ये शब्द भी अर्धर्च-गण में हैं—ध्वज, तीर्थ, शरीर, मण्डप, यूप, देह, अङ्कुश, पात्र, सूत्र आदि। (सामान्ये नपुंसकम्) जहाँ पर विशेष लिंग का भान नहीं होता है, वहाँ पर सामान्य अर्थ में नपुंसकलिंग होता है। मृदु पचति (हल्के ढङ्ग से पकाता है)—मृदु में सामान्य में नपुं०। प्रातः कमनीयम् (प्रातःकाल सुन्दर है)—कमनीयम् में सामान्य में नपुं०।

तत्पुरुष-समास समाप्त।



## ४. बहुव्रीहि-समास

सूचना—(१) बहुव्रीहि समास में प्रथमान्त पदों का अन्य पद के अर्थ में समास होता है। कुछ स्थानों पर व्यधिकरण (प्रथमान्त से भिन्न सप्तम्यन्त आदि का) समास भी होता है। (२) (प्रायेणान्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः) बहुव्रीहि में प्रायः अन्य पद का अर्थ प्रधान होता है। (३) इस समास में सर्वत्र समास होने पर कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिक संज्ञा होगी और सुपो धातु० (७२१) से समस्त पदों के बाद की विभक्तियों का लोप हो जाएगा। तत्पश्चात् सु आदि विभक्तियाँ होंगी। (४) बहुव्रीहि समास की साधारणतया पहचान यह है कि जहाँ अर्थ करने पर जिसको, जिसने, जिसका आदि अर्थ निकलता है तथा समस्त पद किसी विशेष्य के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है।

### १५०. शेषो बहुव्रीहिः ( २-२-२३ )

अधिकारोऽयं प्राग्द्वन्द्वात् ॥

चार्थे द्वन्द्वः (१७०) से पहले बहुव्रीहि समास का अधिकार है। पूर्व प्रकरणों से शेष स्थानों पर बहुव्रीहि समास होता है।

### १५१. अनेकमन्यपदार्थे ( २-२-२४ )

अनेकं प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमानं वा समस्यते स बहुव्रीहिः ॥

अन्य पद के अर्थ में वर्तमान अनेक प्रथमान्त पदों का विकल्प से समास होता है और उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं।

### १५२. सप्तमीविशेषणे बहुव्रीहौ ( २-२-३५ )

सप्तम्यन्तं विशेषणं च बहुव्रीहौ पूर्वं स्यात्। अत एव ज्ञापकाद्व्यधिकरणपदो बहुव्रीहिः ॥

सप्तम्यन्त और विशेषण का बहुव्रीहि में पूर्व प्रयोग होता है। सूचना—इस सूत्र में सप्तम्यन्त का पूर्वप्रयोग कहा गया है, अतः ज्ञात होता है कि व्यधिकरण (भिन्न विभक्तिवाले) पदों का भी बहुव्रीहि समास होता है।

### १५३. हलदन्तात् सप्तम्याः संज्ञायाम् ( ६-३-९ )

हलन्ताददन्ताच्च सप्तम्या अलुक्। कण्ठेकालः। प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदको ग्रामः। ऊढरथोऽनड्वान्। उपहृतपशू रुद्रः। उद्धृतीदना स्थाली। पीताम्बरो हरिः। वीरपुरुषको ग्रामः। (प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः)। प्रपतितपर्णः, प्रपर्णः। (नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः)। अविद्यमानपुत्रः अपुत्रः ॥

हलन्त और ह्रस्व अकारान्त शब्दों के बाद सप्तमी का लोप नहीं होता है। कण्ठेकालः (नीलकण्ठ, शिव)—कण्ठे कालः यस्य सः। समास और सप्तमी का अलुक्। प्राप्तोदकः

ग्रामः (जहाँ जल पहुँच गया है, ऐसा ग्राम)—प्राप्तम् उदकं यं सः। द्वितीया विभक्ति के अर्थ में बहुव्रीहि समास। ऊढरथः अनड्वान् (जिसने रथ चलाया है, ऐसा बैल)—ऊढः रथः येन सः। तृतीया विभक्ति के अर्थ में समास। उपहृतपशुः रुद्रः (जिसको पशु उपहार दिया गया है, ऐसा शिव)—उपहृतः पशुः यस्मै सः। चतुर्थी विभक्ति के अर्थ में समास। उद्धृतौदना स्थालो (जिसमें से भात निकाल लिया गया है, ऐसी पत्तीली)—उद्धृतम् ओदनं यस्याः सा। पंचमी के अर्थ में समास। पीताम्बरः हरिः (पीले वस्त्रवाले, विष्णु)—पीतम् अम्बरं यस्य सः। षष्ठी के अर्थ में समास। वीरपुरुषकः ग्रामः (जिसमें वीर पुरुष हैं, ऐसा ग्राम)—वीराः पुरुषाः यस्मिन् सः। सप्तमी के अर्थ में समास। शेषाद् विभाषा (९६९) से समासान्त कप् (क) प्रत्यय।

(प्रादिभ्यो धातुजस्य वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः, वा०) प्र आदि के बाद धातुज (धातु से बने हुए रूप) के साथ समास होता है और उसके उत्तरपद का विकल्प से लोप होता है। प्रपतितपर्णः, प्रपर्णः (जिससे पत्ते गिर चुके हैं)—प्रपतितानि पर्णानि यस्मात्। समास, पतित का विकल्प से लोप। (नजोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः, वा०) नञ् के बाद जो अस्ति (विद्यमान) अर्थवाला पद, तदन्त का अन्य पद के साथ बहुव्रीहि समास होता है और विद्यमान अर्थ वाले पद का विकल्प से लोप होता है। अविद्यमानपुत्रः, अपुत्रः (पुत्र-रहित)—अविद्यमानः पुत्रः यस्य सः। समास, विद्यमान का विकल्प से लोप।

### ९५४. स्त्रियाः पुंवद् भाषितपुंस्कादनूङ् समानाधिकरणे

स्त्रियामपूरणीप्रियादिषु (६-३-३४)

उक्तपुंस्कादनूङ् ऊङोऽभावोऽस्यामिति बहुव्रीहिः। निपातनात्पञ्चम्या अलुक् षष्ठ्याश्च लुक्। तुल्ये प्रवृत्तिनिमित्ते यदुक्तपुंस्कं तस्मात्पर ऊङोऽभावो यत्र तथाभूतस्य स्त्रीवाचकशब्दस्य पुंवाचकस्यैव रूपं स्यात् समानाधिकरणे स्त्रीलिङ्गे उत्तरपदे, न तु पूरण्यां प्रियादी च परतः। गोस्त्रियोरिति ह्रस्वः। चित्रगुः। रूपवद्भार्यः। अनूङ् किम्? वामोरुभार्यः। पूरण्यां तु—

प्रवृत्ति-निमित्त समान होने पर जो शब्द उक्तपुंस्क (पुंलिंग में प्रयुक्त) है, ऐसे स्त्रीलिंगवाचक शब्द को पुंलिंग शब्द हो जाता है, समानाधिकरण स्त्रीलिंग शब्द बाद में होने पर, किन्तु पूरणी-संख्या (प्रथमा आदि) और प्रिय आदि शब्द बाद में न हों तथा स्त्रीलिंग शब्द के बाद ऊङ् (ऊ) प्रत्यय न लगा हो तो। चित्रगुः (चितकबरी गायोवाला)—चित्राः गावः यस्य सः। समास, इससे चित्रा को पुं० चित्र, गोस्त्रियो० (९३७) से गो को ह्रस्व होकर गु। रूपवद्भार्यः (जिसकी स्त्री रूपवती है)—रूपवती भार्या यस्य सः। समास, पुंवत् होने से रूपवती को रूपवत्, गोस्त्रियो० (९३७) से भार्या को ह्रस्व होकर भार्य। प्रत्युदाहरण—वामोरुभार्यः (जिसकी भार्या सुन्दर जंघवाली है)—वामोरुः भार्या यस्य सः। इसमें वामोरु में ऊङ् प्रत्यय है, अतः उसे पुंवत् नहीं हुआ। गोस्त्रियो० से भार्या में ह्रस्व होगा।

### ९५५. अप्पूरणीप्रमाण्योः (५-४-११६)

पूरणार्थप्रत्ययान्तं यत्स्त्रीलिङ्गं तदन्तात्प्रमाण्यन्ताच्च बहुव्रीहेरप्यात्। कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ता कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। स्त्री प्रमाणी यस्य स स्त्रीप्रमाणः। अप्रियादिषु किम्? कल्याणीप्रिय इत्यादि ॥

पूरणार्थक-प्रत्ययान्त स्त्रीलिंग शब्द अन्त में होने पर तथा प्रमाणी अन्तवाले बहुव्रीहि से अप् (अ) प्रत्यय होता है। कल्याणीपञ्चमा रात्रयः (जिन रात्रियों में पाँचवीं रात्रि शुभ है)—कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः। समास, पञ्चमी शब्द में पूरणार्थक प्रत्यय डट् और मट् हैं, अतः पूरणी का निषेध होने से कल्याणी को पुंलिंग नहीं हुआ, इससे समासान्त अप् (अ) प्रत्यय होने पर यस्येति च (२३६) से ई का लोप, टाप्, प्र० बहु०। स्त्रीप्रमाणः (स्त्री के कहने में चलनेवाला)—स्त्री प्रमाणी यस्य सः। समास, इस सूत्र से समासान्त अप् (अ), यस्येति च (२३६) से ई का लोप। कल्याणीप्रियः (जिसकी स्त्री कल्याणकारी है)—कल्याणी प्रिया यस्य सः। समास, प्रिया शब्द बाद में होने से पुंवत् नहीं हुआ, गोस्त्रियो० (१३७) से प्रिया के आ को ह्रस्व।

### १५६. बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच् (५-४-११३)

स्वाङ्गवाचिसक्थ्यक्ष्णान्ताद्बहुव्रीहेः षच् स्यात्। दीर्घसक्थः। जलजाक्षी। स्वाङ्गात्किम्? दीर्घसक्थि शकटम्। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः। अक्ष्णोऽदर्शनादिति वक्ष्यमाणोऽच् ॥

शरीर के अवयव-वाचक सक्थि और अक्षि शब्द अन्त में हों तो ऐसे बहुव्रीहि से समासान्त षच् (अ) प्रत्यय होता है। सूचना—षित् होने से स्त्रीलिंग में षिद्गौरादिभ्यश्च (१२४०) से डीष् (ई) होगा। दीर्घसक्थः (जिसकी जाँघ बड़ी है)—दीर्घे सक्थिनी यस्य सः। समास, इससे समासान्त षच् (अ), दीर्घसक्थि + अ, यस्येति च (२३६) से इ का लोप। जलजाक्षी (कमल के तुल्य आँखवाली)—जलजे इव अक्षिणी यस्याः सा। समास, समासान्त षच् (अ), जलजाक्षि + अ, यस्येति च (२३६) से इ का लोप, स्त्रीलिंग में षिद्० (१२४०) से डीष् (ई) प्रत्युदाहरण—दीर्घसक्थि शकटम् (लम्बी लकड़ीवाली गाड़ी)—दीर्घे सक्थिनी यस्य तत्। सक्थि शरीरावयव-वाचक नहीं है, अतः समासान्त षच् नहीं हुआ। स्थूलाक्षा वेणुयष्टिः (बड़ी आँखवाली बाँस की लाठी)—स्थूले अक्षिणी यस्याः सा। समास, अक्षि स्वांगवाचक नहीं है, अतः षच् नहीं हुआ। अक्ष्णोऽदर्शनात् (१७९) से समासान्त अच्, इ का लोप, टाप्।

### १५७. द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः (५-४-११५)

आभ्यां मूर्ध्नः षः स्याद्बहुव्रीहौ। द्विमूर्धः। त्रिमूर्धः ॥

द्वि और त्रि के बाद मूर्धन् से समासान्त ष (अ) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में। द्विमूर्धः (दो सिरवाला)—द्वौ मूर्धानौ यस्य सः। समास, इससे समासान्त ष (अ), नस्तद्धिते (१०४) से मूर्धन् के अन् का लोप। त्रिमूर्धः (तीन सिरवाला)—त्रयः मूर्धानः यस्य सः। द्विमूर्धः के तुल्य।

### १५८. अन्तर्बहिर्भ्यां च लोमः (५-४-११७)

आभ्यां लोमोऽप्स्याद्बहुव्रीहौ। अन्तर्लोमः। बहिर्लोमः ॥

अन्तर् और बहिस् शब्द के बाद लोमन् से समासान्त अप् (अ) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में। अन्तर्लोमः (जिसके बाल अन्दर हैं)—अन्तः लोमानि यस्य सः। समास, इससे समासान्त अप् (अ), नस्तद्धिते (१०४) से लोमन् के अन् का लोप। बहिर्लोमः (जिसके बाल बाहर हैं)—बहिः लोमानि यस्य सः। अन्तर्लोमः के तुल्य।

### १५९. पादस्य लोपोऽहस्त्यादिभ्यः (५-४-१३८)

हस्त्यादिर्वर्जितादुपमानात्परस्य पादशब्दस्य लोपः स्याद्बहुव्रीहौ। व्याघ्रस्येव पादावस्य व्याघ्रपात्। अहस्त्यादिभ्यः किम्? हस्तिपादः। कुसूलपादः ॥

हस्तिन् आदि से भिन्न उपमान के बाद पाद के अन्तिम अ का लोप होता है, बहुव्रीहि में। व्याघ्रपात् (व्याघ्र के तुल्य पैरवाला) व्याघ्रस्य इव पादौ यस्य सः। समास, इससे द के अ का लोप। प्रत्युदाहरण—हस्तिपादः (हाथी के तुल्य पैरवाला)—हस्तिन् इव पादौ यस्य सः। कुसूलपादः (कुसूल या बड़ा घड़ा के सदृश पैरवाला)—कुसूलस्य इव पादौ यस्य सः। हस्तिन् आदि पहले होने से पाद के अ का लोप नहीं हुआ।

### १६०. संख्यासुपूर्वस्य ( ५-४-१४० )

पादस्य लोपः स्यात्समासान्तो बहुव्रीहौ। द्विपात्। सुपात्॥

संख्यावाचक और सु पहले हो तो पाद के अ का लोप होगा, बहुव्रीहि में। द्विपात् (दो पैरवाला मनुष्य)—द्वौ पादौ यस्य सः। समास, इससे पाद के अ का लोप। सुपात् (सुन्दर पैरोंवाला)—शोभनौ पादौ यस्य सः। द्विपात् के तुल्य समास, अ का लोप।

### १६१. उद्विभ्यां काकुदस्य ( ५-४-१४८ )

लोपः स्यात्। उल्काकुत्। विकाकुत्॥

उद् और वि के बाद काकुद के अन्तिम अ का लोप होता है, बहुव्रीहि में। उल्काकुत् (जिसका तालु उठा हुआ है)—उद्गतं काकुदं यस्य सः। समास, इससे अन्तिम अ का लोप। विकाकुत् (जिसका तालु विकृत है)—विगतं काकुदं यस्य सः। समास, अन्तिम अ का लोप।

### १६२. पूर्णाद् विभाषा ( ५-४-१४९ )

पूर्णाकाकुत्। पूर्णाकाकुदः॥

पूर्ण शब्द के बाद काकुद के अन्तिम अ का लोप विकल्प से होता है, बहुव्रीहि में। पूर्णाकाकुत्, पूर्णाकाकुद (पूर्ण तालुवाला)—पूर्णं काकुदं यस्य सः। समास, अन्तिम अ का विकल्प से लोप।

### १६३. सुहृदुर्हृदौ मित्रामित्रयोः ( ५-४-१५० )

सुदुर्भ्यां हृदयस्य हृद्भावो निपात्यते। सुहृन्मित्रम्। दुर्हृदमित्रः॥

बहुव्रीहि में सु और दुर् के बाद हृदय को निपातन से हृद् हो जाता है, क्रमशः मित्र और शत्रु अर्थ में। सुहृद् (मित्र)—शोभनं हृदयं यस्य सः। समास, हृदय को हृद्। दुर्हृद् (शत्रु)—दुष्टं हृदयं यस्य सः। समास, हृदय को हृद्।

### १६४. उरःप्रभृतिभ्यः कप् ( ५-४-१५१ )

उरस् आदि शब्दों से समासान्त कप् (क) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में।

### १६५. सोऽपदादौ ( ८-३-३८ )

पाशकल्पककाम्येषु विसर्गस्य सः॥

पाश, कल्प, क और काम्य बाद में हों तो विसर्ग को स् होता है।

### १६६. कस्कादिषु च ( ८-३-४८ )

एध्विण उत्तरस्य विसर्गस्य षोऽन्यस्य तु सः। इति सः। व्यूढोरस्कः॥

कस्क आदि गण में पठित शब्दों में इण् (अ को छोड़कर शेष स्वर, ह, अन्तःस्थ) के बाद विसर्ग को ष् होगा, अन्यत्र विसर्ग को स्। व्यूढोरस्कः (विशाल छातीवाला)—व्यूढम् उरः यस्य सः। समास, उरः० (९६४) से समासान्त कप् (क), स् को खर० (९३) से विसर्ग, इससे विसर्ग को स्।

### ९६७. इणः षः (८-३-३९)

इण उत्तरस्य विसर्गस्य षः पाशकल्पककाम्येषु परेषु। प्रियसर्पिष्कः ॥

इण् (अ को छोड़कर शेष स्वर, ह, अन्तःस्थ) के बाद विसर्ग को ष् होता है, बाद में पाश, कल्प, क और काम्य हों तो। प्रियसर्पिष्कः (जिसको घी प्रिय है)—प्रियं सर्पिः यस्य सः। समास, उरः० (९६४) से समासान्त कप् (क), सर्पिस् के स् को विसर्ग, इससे विसर्ग को ष।

### ९६८. निष्ठा (२-२-३६)

निष्ठान्तं बहुव्रीहौ पूर्व स्यात्। युक्तयोगः ॥

बहुव्रीहि में क्त और क्तवतु-प्रत्ययान्त का पूर्व प्रयोग होता है। युक्तयोगः (जिसने योग लगाया है, योगी)—युक्तः योगः येन सः। समास, इससे युक्त का क्त-प्रत्ययान्त होने से पूर्व प्रयोग।

### ९६९. शेषाद् विभाषा (५-४-१५४)

अनुक्तसमासान्ताद्बहुव्रीहेः कब्वा। महायशस्कः, महायशाः ॥

शेष (जहाँ पर कोई समासान्त नहीं कहा है, ऐसे) स्थानों पर विकल्प से समासान्त कप् (क) प्रत्यय होता है, बहुव्रीहि में। महायशस्कः, महायशाः (महायशस्वी)—महत् यशः यस्य सः। समास, विकल्प से कप् (क), आन्महत० (९४४) से त् को आ।

बहुव्रीहि-समास समाप्त।



## ५. द्वन्द्व-समास

सूचना—(१) (चार्थे द्वन्द्वः) च (और) अर्थ में प्रथमान्त पदों का द्वन्द्व समास होता है। द्वन्द्व समास की पहचान है कि जहाँ अर्थ करने पर बीच में 'और' अर्थ निकले। (प्रायेणोभयपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः) द्वन्द्व में प्रायः दोनों पदों का अर्थ मुख्य होता है। (२) इस समास में सर्वत्र समास होने पर कृत्तद्धितसमासाश्च (११७) से प्रातिपदिकसंज्ञा होगी और सुपो धातु० (७२१) से समस्त पदों के बाद की विभक्तियों का लोप होगा। तत्पश्चात् सु आदि विभक्तियाँ होंगी। (३) समास होने पर पूर्व पद में यदि कोई नकारान्त शब्द होगा तो उसके न् का नलोपः० (१८०) से लोप हो जाएगा। (४) इतरेतरयोग अर्थ में द्वन्द्व समास होने पर वस्तु या व्यक्तियों की संख्या के अनुसार द्विवचन या बहुवचन होगा। समाहार (समूह) अर्थ में नपुंसकलिंग एकवचन होगा।

### ९७०. चार्थे द्वन्द्वः (२-२-२९)

अनेकं सुबन्तं चार्थे वर्तमानं वा समस्यते, स द्वन्द्वः।

'च' (और) अर्थ में विद्यमान अनेक सुबन्तों का विकल्प से समास होता है और उसे द्वन्द्व कहते हैं।

समुच्चयान्वाचयेतरेतरयोगसमाहाराश्चार्थाः । तत्र 'ईश्वरं गुरुं च भजस्व', इति परस्परनिरपेक्षस्यानेकस्यैकस्मिन्नन्वयः समुच्चयः । 'भिक्षामट गां चानय' इत्यन्यतरस्यानुषङ्गिकत्वेनान्वयोऽन्वाचयः । अनयोरसामर्थ्यात् समासो न । 'धवखदिरौ छिन्धि' इति मिलितानामन्वय इतरेतरयोगः । 'संज्ञापरिभाषम्' इति समूहः समाहारः ।

च के चार अर्थ हैं—(१) समुच्चय, (२) अन्वाचय, (३) इतरेतरयोग, (४) समाहार।  
 (१) समुच्चय—परस्पर निरपेक्ष (असंबद्ध) अनेक पदार्थों का एक में अन्वय होने को समुच्चय कहते हैं जैसे—ईश्वरं गुरुं च भजस्व (ईश्वर और गुरु की सेवा करो)। यहाँ पर ईश्वर और गुरु असंबद्ध हैं, दोनों का भजस्व में अन्वय है। असंबद्ध होने से समास नहीं हुआ।  
 (२) अन्वाचय—इसमें एक पदार्थ मुख्य और एक गौण होता है। दोनों का एक क्रिया में अन्वय होता है। भिक्षामट गां चानय (भिक्षा के लिए जाओ और गाय लेते आना)। गाय लाना गौण कार्य है। समुच्चय और अन्वाचय में सामर्थ्य न होने से समास नहीं होगा। (३) इतरेतरयोग—संबद्ध पदार्थों के क्रिया में अन्वय को इतरेतरयोग कहते हैं। धवखदिरौ छिन्धि (धव और खैर को काटो)—धवश्च खदिरश्च धवखदिरौ। संबद्ध होने से समास हुआ और दो वस्तु होने से द्विवचन हुआ। (४) समाहार—समूह को समाहार कहते हैं। संज्ञापरिभाषम् (संज्ञा और परिभाषा का समूह)—संज्ञा च परिभाषा च, तयोः समाहारः। इसमें समूह का क्रिया में अन्वय होगा, अतः नपुंसकलिग एक० होता है।

### १७१. राजदन्तादिषु परम् ( २-२-३१ )

एषु पूर्वप्रयोगार्हं परं स्यात् । दन्तानां राजा राजदन्तः । ( धर्मादिष्वनियमः ) । अर्थधर्मौ । धर्मार्थावित्यादि ॥

राजदन्त आदि शब्दों में पूर्व प्रयोग के योग्य पद का बाद में प्रयोग होता है। राजदन्तः (दाँतों का राजा)—दन्तानां राजा। षष्ठी तत्पुरुष समास। इससे दन्त का परप्रयोग, राजन् के न् का लोप। ( धर्मादिष्वनियमः, वा० ) धर्म, अर्थ आदि शब्दों में किसको पहले रखा जाए, इसका कोई नियम नहीं है, अर्थात् इच्छानुसार किसीको भी पहले रख सकते हैं। अर्थधर्मौ, धर्मार्थौ (धर्म और अर्थ)—अर्थश्च धर्मश्च। द्वन्द्व, क्रमशः अर्थ और धर्म का पूर्व प्रयोग।

### १७२. द्वन्द्वे घि ( २-२-३२ )

द्वन्द्वे घिसंज्ञं पूर्वं स्यात् । हरिश्च हरश्च हरिहरौ ॥

द्वन्द्व समास में घि-संज्ञक का पूर्व-प्रयोग होता है। सूचना—शेषो घ्यसखि (१७०) सखि शब्द को छोड़कर शेष ह्रस्व इकारान्त और उकारान्त को घि कहते हैं। हरिहरौ (विष्णु और शिव)—हरिश्च हरश्च। समास, हरि घिसंज्ञक है, अतः उसका पूर्व-प्रयोग।

### १७३. अजाद्यदन्तम् ( २-२-३३ )

द्वन्द्वे पूर्वं स्यात् । ईशकृष्णौ ॥

जिस शब्द के प्रारम्भ में अच् (स्वर) है और अन्त में ह्रस्व अ, उसका द्वन्द्व में पूर्व-प्रयोग होगा। ईशकृष्णौ (ईश्वर और कृष्ण)—ईशश्च कृष्णश्च। ईश अजादि और अदन्त है, अतः उसका पूर्व प्रयोग है।

### १७४. अल्पाचूतरम् ( २-२-३४ )

शिवकेशवौ ॥

अपेक्षाकृत थोड़े अच् (स्वर) वाले पद का पूर्व-प्रयोग होता है। शिवकेशवौ (शिव और कृष्ण)—शिवश्च केशवश्च। शिव में केशव से कम स्वर हैं, अतः उसका पूर्व-प्रयोग।

### १७५. पिता मात्रा ( १-२-७० )

मात्रा सहोक्तौ पिता वा शिष्यते। माता च पिता च पितरौ, मातापितरौ वा ॥

पिता का माता के साथ समास होने पर पितृ शब्द विकल्प से शेष रहता है। पितरौ, मातापितरौ (माता-पिता)—माता च पिता च। द्वन्द्व, पितृ शब्द शेष रहने पर उसमें द्विवचन होगा। पक्ष में मातृपितरौ होने पर आनङ् ऋतो० (६-३-२५) से मातृ के ऋ को आ।

### १७६. द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ( २-४-२ )

एषां द्वन्द्व एकवत्। पाणिपादम्। मार्दङ्गिकवैणविकम्। रथिकाश्वारोहम् ॥

प्राणि, तूर्य (बाजे) और सेना के अंगों के वाचक शब्दों का द्वन्द्व एकवचन होता है। पाणिपादम् (हाथ-पैर)—पाणी च पादौ च। समाहार अर्थ में द्वन्द्व, एकवचन। मार्दङ्गिकवैणविकम् (मृदङ्ग बजानेवाला और वंशी बजानेवाला)—मार्दङ्गिकश्च वैणविकश्च। समाहार-द्वन्द्व, एक०। रथिकाश्वारोहम् (रथिक और घुड़सवार)—रथिकाश्च अश्वारोहाश्च। समाहार-द्वन्द्व, एक०।

### १७७. द्वन्द्वाच्चुदषहान्तात् समाहारे ( ५-४-१०६ )

चवर्गान्तादृषहान्ताच्च द्वन्द्वाट् च स्यात्समाहारे। वाक् च त्वक् च वाक्त्वचम्। त्वक्स्त्रजम्। शमीदृषदम्। वाक्त्वषम्। छत्रोपानहम्। समाहारे किम्? प्रावृट्शरदौ ॥

चवर्ग अन्तवाले तथा द् प् ह् अन्तवाले द्वन्द्व से समासान्त टच् (अ) प्रत्यय होता है, समाहार में। टच् का अ शेष रहता है। वाक्त्वचम् (वाणी और त्वचा)—वाक् च त्वक् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, समासान्त टच् (अ)। त्वक्स्त्रजम् (त्वचा और माला) त्वक् च स्त्रक् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। शमीदृषदम् (शमी और पत्थर)—शमी च दृषद् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। वाक्त्वषम् (वाणी और कान्ति)—वाक् च त्विद् च, तयोः समाहारः। द्वन्द्व, टच्। छत्रोपानहम् (छाता और जूता)—छत्रं च उपानहौ च, तेषां समाहारः। द्वन्द्व, टच् (अ)। प्रत्युदाहरण—प्रावृट्शरदौ (वर्षा और शरद्)—प्रावृट् च शरत् च। इतरेतर द्वन्द्व, समाहार न होने से टच् नहीं हुआ।

द्वन्द्व समास समाप्त।



## ६. समासान्त-प्रकरण

### १७८. ऋक्पूरब्धु पथामानक्षे ( ५-४-७४ )

अ अनक्षे इतिच्छेदः । ऋगाद्यन्तस्य समासस्य अप्रत्ययोऽन्तावयवोऽक्षे या धृस्तदन्तस्य न । अर्धर्चः । विष्णुपुरम् । विमलापं सरः । राजधुरा । अक्षे तु अक्षधूः । दृढधूरक्षः । सखिपथः । रम्यपथो देशः ॥

ऋच्, पुर, अप, धुर और पथिन् शब्द समास के अन्त में हों तो समासान्त अ प्रत्यय होता है, अक्ष (रथचक्र का मध्यभाग) की धुरा अर्थ में धुर शब्द होगा तो अ प्रत्यय नहीं होगा। अर्धर्चः (ऋचा का आधा भाग)—ऋचः अर्धम् । अर्ध० (११८) से समास, इससे समासान्त अ प्रत्यय। विष्णुपुरम् (विष्णु की नगरी)—विष्णोः पूः । षष्ठी तत्पुरुष, इससे समासान्त अ प्रत्यय। विमलापं सरः (निर्मल जलवाला तालाब)—विमला आपः यत्र तत् । बहुव्रीहि, समासान्त अ प्रत्यय। राजधुरा (राज्य का भार)—राजः धूः । षष्ठी तत्पुरुष, समासान्त अ, टाप, राजन् के न् का लोप। अक्षधूः (अक्ष की धुरा)—अक्षस्य धूः । अक्ष अर्थ होने से समासान्त अ नहीं हुआ। दृढधूः अक्षः (दृढ धुरीवाला अक्ष)—दृढा धूः यस्य सः । अक्षधूः के तुल्य अ नहीं हुआ। सखिपथः (मित्र का मार्ग)—सख्युः पन्थाः । षष्ठी तत्पुरुष, समासान्त अ, नस्तद्धिते (१०४) से पथिन् के इन् का लोप। रम्यपथः देशः (सुन्दर मार्गवाला देश)—रम्याः पन्थानः यस्मिन् सः । बहुव्रीहि, समासान्त अ, इन् का लोप।

### १७९. अक्ष्योऽदर्शनात् ( ५-४-७६ )

अचक्षुःपर्यायादक्ष्योऽच् स्यात्समासान्तः । गवामक्षीव गवाक्षः ॥

चक्षु-भिन्न अर्थ में अक्षि शब्द हो तो समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। गवाक्षः (खिड़की)—गवाम् अक्षि इव (गाय की आँख के तुल्य)। षष्ठी तत्पुरुष, समासान्त अ, यस्येति च से इ का लोप, अवङ्० (४७) से गो के ओ को अव, दीर्घसंधि।

### १८०. उपसर्गादध्वनः ( ५-४-८५ )

प्रगतोऽध्वानं प्राध्वो रथः ॥

उपसर्ग के बाद अध्वन् शब्द हो तो समासान्त अच् (अ) प्रत्यय होता है। प्राध्वः रथः (मार्ग पर चला हुआ रथ)—प्रगतः अध्वानम् । अत्यादयः० (वा०) से समास, समासान्त अच् (अ), नस्तद्धिते (१०४) से अध्वन् के अन् का लोप।

### १८१. न पूजनात् ( ५-४-६९ )

पूजनार्थात्परेभ्यः समासान्ता न स्युः । सुराजा । अतिराजा ॥

प्रशंसावाचक शब्दों के बादवाले पदों से समासान्त प्रत्यय नहीं होते हैं। सुराजा (अच्छा राजा)—शोभनः राजा, सुराजा । अतिराजा (राजा को अतिक्रमण करनेवाला)—अतिक्रान्तः राजानम् । अत्यादयः (वा०) से समास । दोनों स्थानों पर राजाहः० (१४३) से समासान्त टच् (अ) नहीं हुआ।

समासान्त-प्रकरण समाप्त ।

